Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
ISSN(O) : 2584-2692
Vol. 1, Issue 2, Nov.-Dec., 2023
Available online : https://sijarah.com/

मार्क्सवादी आलोचना के परिप्रेक्ष्य में डॉ. नामवर सिंह

डॉ. श्रवण कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर – हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय चौबट्टाखाल, पौडी गढवाल, उत्तराखंड

नामवर सिंह मार्क्सवाद के अनुकूल व्यवहार करके भी आलोचना में 'वास्तविकता' के नजदीक का दृष्टिकोण रखते हैं। 'लेखक' से ज्यादा एक 'वाचक'[1] के रूप से सन्तुष्ट डॉ. नामवर सिंह के लिए मार्क्सवादी वैचारिक दृष्टि उनकी आलोचना पद्धति को और ज्यादा पठनीय, संवादपरक और विचारोत्तेजक बनाने में सहायक रही है। आलोचना पद्धति का यह भी वैषिष्ट है कि वे उदार मार्क्सवादी हैं, उनके प्रिय आलोचक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का गैर मार्क्सवादी होना इसका साक्षात प्रमाण है। 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंष का योगदान 'और 'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो' नामवर सिंह द्वारा लिखित उनकी प्रथम दोनों कृतियां, संपादन, इतिहास और षोधकार्य से जुड़ी हुई हैं। इनमें निहित विचार, टिप्पणियाँ, लेखन की सूक्ष्मता, सहृदयता, मार्क्सवादी चिन्तन के प्रति उनकी समझ और आलोचक की दषा–दिषा को स्पष्ट करती है''[2] उनकी हिन्दी साहित्य के इतिहास को एक नवीन दृष्टि, मार्क्सवादी दृष्टि को देखने समझने की षुरूआत यहीं से हो जाती है।

मार्क्सवादी आलोचक के रूप में नामवर सिंह की ''मार्क्सवादी साहित्य दृष्टि बराबर ही कविता की 'सापेक्ष स्वतन्त्रता' पर बल देती रही है।''[3] नामवर सिंह ने ठीक ही लिखा है अपनी पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान' में कि ''मूल्यवान है एक भी ऐसे आलोचक का होना जो किसी भी चीज़ को तब तक अच्छा नहीं कहे, जब तक उस निर्णय के लिए अपना सब कुछ दांव पर लगाने के लिए तैयार न हो ।''[4] नामवर सिंह के ये षब्द आलोचक–आलोचना, चिन्तन–निर्णय के आपसी सम्बन्धों और अपने निर्णयों के पीछे निहित समर्पण, विष्वास, प्रतिबद्धता और ईमानदारी का स्पष्ट संकेत दे रहे हैं।

'इतिहास और आलोचना' नामक पुस्तक के माध्यम से साहित्येतिहास के प्रति उनका नवीन दृष्टिकोण सामने आता है। इसमे 'इतिहास का नया दृष्टिकोण' निबन्ध द्वारा द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से 'हिन्दी के साहित्येतिहास' को व्याख्यायित करके उसमें चार लक्षणों को मुख्यतः साबित किया। वस्तु, व्यक्ति, घटना, विचार का अविभाज्य रूप, गतिषीलता, अग्रसारता, अन्तर्विरोध या असंगति साहित्य इतिहास के प्रति द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण अपनाकर भी उसकी ऐतिहासिकता और सामाजिकता को नामवर सिंह अनदेखा नहीं करते– ''समाज ने साहित्य को उत्पन्न किया है, साहित्य ने समाज को नहीं। इसलिए साहित्य का इतिहास समझने के लिए समाज के विकास का ज्ञान आवष्यक है।''[5]

आइये, साहित्य और समाज को परस्पर सम्बन्धित मानकर दोनों की गतिषीलता और अन्तर सम्बन्धों में निहित विसंगतियों को समझने का प्रयास करते है। नामवर सिंह, समाज की जातीय परम्परा, लोक–तत्व, अतीत की धरोहर को भी साहित्येतिहास में दर्षाते हैं। ''तथ्यपरकता वैज्ञानिकता की अपेक्षा साहित्येतिहास की भौतिकवादी दृष्टिकोण से व्याख्या

Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
ISSN(O) : 2584-2692
Vol. 1, Issue 2, Nov.-Dec., 2023
Available online : https://sijarah.com/

'कार्ल मार्क्स' की जगह 'हीगेल' के निकट अधिक साम्य रखती है।''[6] मार्क्सवादी दृष्टिकोण के समर्थक प्रयोगवादी साहित्य की कुछ मान्यताओं का समर्थन अवष्य करते हैं लेकिन प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों साहित्य धाराओं में कलापक्ष की अपेक्षा सामाजिकता की सर्वोच्चता को स्वीकारते है। उन्हें यथार्थ जगत से 'अनुभूत–सत्य' या 'जीवन–सत्य' से सम्बन्धित विषयवस्तु अधिक प्रिय है। ''साहित्य में विषय–वस्तु पर बल देने का अर्थ है यथार्थ जगत के सत्य का पूर्ण और गहरा ज्ञान, इसी ज्ञान से जीवन के प्रति वह अडिग आस्था आती है जो सम्पूर्ण साहित्य को अद्म्य दीप्ति देती है।''[7]

मार्क्सवाद में 'यथार्थ की जमीन' पर होने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तनों का एक अहम ढंग नामवर सिंह ने स्वीकारा है– ''मार्क्सवादी विचारकों के अनुसार द्वंद्ववाद केवल यथार्थ समझने का एक माध्यम नही है, अपितु यथार्थ में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करने का प्रमुख तरीका है। यह संसृति के प्रति एक प्रभावोत्पादक दृष्टिकोण है।''[8] नामवर सिंह अपनी 'छायावाद' कृति के प्रारम्भ में उसके लेखन का आषय स्पष्ट करते हैं– ''यह निबन्ध छायावाद की काव्यगत विषेषताओं को स्पष्ट करते हुए छायाचित्रों में निहित सामाजिक सत्य का उद्घाटन करने के लिए लिखा है।''[9] 'छायावाद' नामक ऐतिहासिक–सामाजिक विष्लेषण निबन्ध जहाँ एक ओर छायावादी काव्यगत विषेषताओं को उजागर करता है, वहीं दूसरी ओर यह आलोचनात्मक पुस्तक छायावादी स्वानुभूति संतों–भक्तों के आत्मनिवेदन से किस प्रकार भिन्न है? आदि तथ्यों पर विस्तार से विचार किया गया है। 'छायावाद' सम्बन्धी निष्कर्षों पर अपने उद्गार व्यक्त करते हुए लिखते है–''छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेषी पराधीनता से।''[10]

नामवर सिंह की ये पंक्तियाँ जहाँ साहित्यानुरागियों को संबल प्रदान करती नजर आती है, वहीं आलोचकों को दिषा–निर्देष। ''मार्क्सवादी साहित्य में जहाँ सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, भाव–सत्ता के जितने ही गहरे स्तर पर होती है, (जैसा कि श्रेष्ठ साहित्य में सदैव होता है) आलोचक का कार्य और कठिन हो जाता है। जो आलोचक इस कठिनाई का कार्य करने में अलसाता है अथवा जिसमें विष्लेषण की इतनी क्षमता नहीं होती या जो अपने दृष्टिकोण विषेष के कारण साहित्य में तात्कालिक घटनाओं का अनुवाद ढूँढता है, वह आलोचक के बारे में प्रायः षिकायत करता रहता है कि वह समकालीन सत्य से दूर रहा अथवा युगधर्म की उपेक्षा कर गया वह तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन से उदासीन रहा।''[11]

वे 'कविता के नये प्रतिमान' में एक बड़े व्यापक स्तर पर अपने आलोचनात्मक सिद्धान्तों को उद्घाटित करते हुए निष्कर्षों का सरलीकरण करते हुए दिखाई देते हैं। ''एक सच्चे अटल और उत्तरदायी आलोचक की भाँति ये प्रतिमान उन्होंने गढ़े नहीं, उन्होंने इनकी खोज की है, प्रतिष्ठा की है, ये उनके आत्मसंघर्ष का प्रतिफल हैं।''[12] ''नामवर सिंह ने नये प्रतिमानों का जो विवेचन किया है वह पूरी तरह मार्क्सवादी आलोचना के मेल में है। रूपगत और वस्तुगत प्रतिमानों का अत्यन्त सफल विवेचन वे इसलिए कर सके है कि उन्होंने इन दोनों के द्वंद्वात्मक सम्बन्धों को समझा है यह द्वंद्व दृष्टि मार्क्सवाद की देन है।''[13]

नामवर सिंह–'छायावाद से नयी कविता' तक रचना–प्रक्रिया में अन्तर षब्दार्थ–मीमांसा को अधिक महत्त्व, काव्य–भाषा, संरचना, तनाव, विसंगति आदि को 'कविता का नया प्रतिमान' मानते हैं– ''रचना की महानता से ही आलोचना महान होती है।''[14]

इसी के परिप्रेक्ष्य में आगे कहते हैं– ''नई कविता यदि आज द्वंद्व और तनाव को काव्य के प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहती है तो वह हिन्दी–आलोचना का ही गौरवमयी परम्परा को ही आगे बढ़ा रही है।''[15]

'तार सप्तक इतिहास की आवृत्ति' नामक निबन्ध में वे 'मुक्तिबोध' को काव्य प्रतिमानों के केन्द्र में मानते है। काव्य संरचना, प्रगीतात्मक और नाटकीय निबन्ध में वे आवयविक सिद्धान्त को मूल्यवान मानते हैं जो कि 'स्वच्छन्द' और 'मार्क्स' दोनों धाराओं को प्रिय है। इस सिद्धान्त द्वारा वे खण्डन की अपेक्षा सम्पूर्ण के महत्त्व को उजागर करते हैं।

'ईमानदारी' और 'प्रमाणिक अनुभूति' निबन्ध में 'आत्मवादी' ईमानदारी के साथ 'मार्क्सवादी' ईमानदारी पर भी जोर दिया गया है। कहानी को साहित्य की एक लोकप्रिय विधा मानते हुए 'कहानी : नयी कहानी' कृति में नामवर सिंह कथा को हिन्दी समीक्षा के केन्द्र में लाकर नयी कथा समीक्षा पद्धति का सृजन करते हैं। इसकी भूमिका से उनका उद्देष्य स्पष्ट है– ''मेरे निकट इनका महत्त्व केवल कहानियों की समीक्षा तक सीमित न होकर एक व्यापक समीक्षा पद्धति के निर्माण की दिषा में है।''[16]

कथा समीक्षा के किसी निष्चित मानदण्ड की अपेक्षा गहन पठन–पाठन काव्य में लय और कथा में कहानीपन, जिज्ञासा की आदिम मनोकृति की सुरक्षा पर बल दिया है। कथा की सार्थकता और अर्थवत्ता को रेखांकित करते हैं– ''कहानी जीवन के टुकड़े निहित 'अन्तर्विरोध', 'द्वन्द्व', 'संक्रान्ति' अथवा 'क्राइसिस' को पकड़ने की कोषिष करती है और ठीक ढंग से पकड़ में आ जाने पर खण्डगत अन्तर्विरोध के किसी न किसी पहलू का आभास दे जाता है।''[17]

'वाद–विवाद और संवाद' नामक कृति जैसा कि नाम से स्पष्ट है, लेखक–आलोचक और आलोचक–पाठक दोनों के परस्पर संवाद के संकल्प को दोहराने का प्रयत्न करती है। वाद–प्रतिवाद और संवाद तीनों का प्रयोग कार्ल मार्क्स भी करते हैं। इसके अन्तर्गत ''मार्क्सवादी सौन्दर्यषास्त्र अभी तक इसकी उपेक्षा करता आया है। दुविधा षायद वर्ग–वर्ग को लेकर है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि अन्ततः इस चुनौती को स्वीकार करना ही पड़ेगा।''[18]

'जनतन्त्र और समालोचना' निबन्ध में वे आलोचना की सक्रियता में मार्क्सवादी आलोचना की भूमिका को स्पष्ट करते हैं। वे मार्क्सवादियों की आपसी विचार विविधता में भी एकता का अनुमान लगाते हैं– ''मार्क्सवादी आलोचक आपस में चाहे कितना लड़े, उनके लिए काफी संगठित है।''[19] 'आलोचना की संस्कृति और संस्कृति की आलोचना' निबन्ध में वे आलोचना कर्म और जीवन पद्धति एवं चिन्तन प्रक्रिया को भिन्न नहीं मानते। 'आलोचना की स्वायत्तता' निबन्ध में स्वायत्ततावादियों या कलावादियों के मार्क्सवाद या प्रतिवाद विरोधी विचारों को उभारा गया है। ''स्वायत्तता भी अपने आप में एक विचारधारा है जिसका एकसूत्रीय कार्यक्रम प्रगतिवाद विरोध है।''[20]

 © Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities

वर्ष 1982 में प्रकाषित 'दूसरी परम्परा की खोज' कृति में नामवर सिंह की सृजनात्मकता अभिव्यक्ति और प्रस्तुति में अन्तर्भेदित स्पष्टता, आलोचनात्मक विवेक, सषक्त अधिकारित सूक्ष्म दृष्टिकोण और मौलिकतापूर्ण समीक्षा का निर्वाह हुआ है। 'दूसरी परम्परा' से अपना तात्पर्य स्पष्ट करते हुए नामवर सिंह लिखते हैं– ''दूसरी परम्परा से मेरा तात्पर्य उस परम्परा से है जो प्रभुत्वषाली परम्परा को चुनौती देती है। यह परम्परा स्वभावतः अतीत में हाषिये पर रही होगी। कहना होगा कि उसका दमन किया होगा।''[21]

हिन्दी में परम्परा का प्रयोग मूलतः एकवचन के रूप में यथा हमारी परम्परा भारतीय परम्परा, साहित्यिक परम्परा आदि हुआ है, जबकि ''मार्क्सवादी आलोचकों द्वारा भारतेन्दु परम्परा, प्रेमचन्द परम्परा, रामचन्द्र षुक्ल परम्परा आदि नामकरण करने को नामवर सिंह मार्क्सवादी आलोचकों की जागरूकता में कमी मानते हैं।''[22]

'दूसरी परम्परा' जिसमें प्रतिष्ठित, स्थापित और प्रभुत्वषाली परम्परा के विरोध के बीज निहित है। यह निरन्तर नवीन खोज को प्रोत्साहित करने की कवायद है जो 'स्थिरता' में विष्वास नहीं रखती। 'दूसरी परम्परा' उसकी आलोचना को कम 'आलोचना' दृष्टि को अधिक व्यंजित करती है, जो स्वयं में ही 'पहली परम्परा' और 'तीसरी परम्परा' के अस्तित्व की भी गुंजाइष रखती है।''[23] यह परम्परा किन्हीं व्यक्तिगत कृतियों या विषिष्टताओं की द्योतक न होकर उन मूल्यों, परम्पराओं को जाँचने–परखने का प्रयत्न है।

''दूसरी परम्परा' एक स्थिर षास्त्र नहीं है। अगर वह स्थिर नहीं है तो 'दूसरी' न रह जाये। प्रतिमानों के विरुद्ध लगातार प्रतिमान बनाये जाने की आवष्यकता रहती है।''[24] इस कृति को लेकर विद्वानों ने उनकी आलोचना की है, लेकिन मूल भाव अन्वेषण करके आलोचना में श्रेष्ठता के सत्य तक पहुंचने का है। इसी तरह की बात अमेरिका के आधुनिक आलोचक **रिचर्ड ब्लैकमर** ने 'द लोगोस एंड केटाकूम : द रोल ऑफ इंटेलेक्चुअल' नामक षीर्षक निबंध में कही है ''जहाँ मार्क्सवाद–सम्बन्धी अज्ञान नई समीक्षा–सम्बन्धी अपरिचय

से होड़ ले रहा हो, वहाँ इतिहास और परम्परा ज्ञान के अभाव में केवल उच्छेदवाद ही पनप सकता है और जाहिर है कि उच्छेदवादी दृष्टि से मार्क्सवादी आलोचना का विकास संभव नहीं है।''[25]

मार्क्सवादी आलोचना के इस रूप तिरस्कार की क्षतिपूर्ति के लिए ही 'कविता के नये प्रतिमान' में काव्य के रूप पक्ष पर अतिरिक्त बल दिया गया है। ''जिनकी दृष्टि पुस्तक की निजी स्थापनाओं तक न जाकर ऊपर–ऊपर केवल नामों पर ही तैरती रहती है, उन प्रभाव खोजी पाठकों से कुछ भी कहना बेकार है, लेकिन जो मार्क्सवादी आलोचना के विकास के लिए प्रयत्नषील हैं वे जानते हैं कि अंग्रेजी 'नई समीक्षा' को साम्राज्यवादी साजिष या 'पतनषील' पाष्चात्य प्रवृत्ति कहकर टाला नहीं जा सकता।''[26] ''अंग्रेजी के मार्क्सवादी आलोचक **आर्नल्ड केटल** ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक अंग्रेजी उपन्यास की भूमिका में नए समीक्षक **डॉ. एफआर लीविस** का ऋण स्वीकार किया है। ऐसा नहीं है कि आर्नल्ड केटल लीविस की प्रतिक्रियावादी सामाजिक दृष्टि से परिचित नहीं थे, किन्तु हिन्दी के अधकचरे मार्क्सवादी अध्येताओं ने सिर्फ इतना ही सुन रखा है, कि लीविस केवल 'प्रतिक्रियावादी रूपवादी' समीक्षक है।''[27]

नामवर सिंह हिन्दी आलोचना को भूमण्डलीकृत स्वरूप देने, नये–नये विषयों यथा–दलित–विमर्ष, सौन्दर्यषास्त्र, सौन्दर्य–मीमांसा की ओर अग्रसर करने के लिए जाने जाते हैं। इनकी आलोचना–पद्धति में सर्वाधिक महत्व विभिन्न विधाओं की रचना–प्रक्रिया को दिया गया है। ऐसा अकेले मार्क्सवाद से संभव नहीं था। इसलिए वे साहित्य की दुनिया की विविध विचारधाराओं और उनकी नवीनता का स्वागत ही करते नजर नहीं आते, अपितु विवेक और संवेदना के धरातल पर प्रचलित विचारधारा को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं। मार्क्सवादी दृष्टिकोण और भारतीय संस्कृति का समन्वय करके जहाँ आलोचनात्मक विमर्ष का दायरा विकसित किया, उच्चकोटि की आलोचनात्मक कृतियाँ दी, वहीं आलोचना के भविष्य को भी उज्ज्वल बनाने का हरसंभव प्रयास करते रहे हैं।

सन्दर्भ सूची

1. कार्ल मार्क्स सामाजिक अध्ययन–शम्भुलाल दोषी, प्रकाषचन्द्र जैन, रावत प्रकाषन, जयपुर, 1996, पृष्ठ–139
2. हिन्दी आलोचना–विष्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 1992, पृष्ठ–200
3. भूमिका– कविता के नये प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 2006,
4. भूमिका– कविता के नये प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 2006,
5. इतिहास और आलोचना– नामवर सिंह, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 1978, पृष्ठ –143
6. आलोचना के बदलते मानदण्ड और हिन्दी साहित्य–डॉ.षिवकरण सिंह, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 1998, पृष्ठ –495
7. इतिहास और आलोचना– नामवर सिंह, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 1978, पृष्ठ –148
8. आलोचना के बदलते मानदण्ड और हिन्दी साहित्य–डॉ.षिवकरण सिंह, किताब महल, इलाहाबाद, 1967, पृष्ठ –492
9. भूमिका–छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 1968, पृष्ठ –5
10. छायावाद– नामवर सिंह, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 1968, पृष्ठ –15
11. छायावाद– नामवर सिंह, सरस्वती प्रेस, बनारस, पृष्ठ –65
12. भूमिका– कविता के नये प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 1982, पृष्ठ –9
13. हिन्दी आलोचना का विकास–नन्दकिषोर नवल, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 2003, पृष्ठ –347
14. छायावाद– नामवर सिंह, सरस्वती प्रेस, बनारस, पृष्ठ –144
15. कविता के नये प्रतिमान–नामवर सिंह, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 1982, पृष्ठ –192

Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
ISSN(O) : 2584-2692
Vol. 1, Issue 2, Nov.-Dec., 2023
Available online : https://sijarah.com/

16. भूमिका–कहानीःनयी कहानी–नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाषन, इलाहाबाद, 1973, पृष्ठ –32
17. भूमिका–कहानीःनयी कहानी–नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाषन, इलाहाबाद, 1973, पृष्ठ –32
18. वाद–विवाद संवाद– नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाषन, इलाहाबाद, 1971, पृष्ठ –78
19. वाद–विवाद संवाद– नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाषन, इलाहाबाद, 1971, पृष्ठ –36
20. आलोचना के रचना–पुरुष– नामवर सिंह–(संपादक), लेख, समकालीन परिदृष्य और नामवर सिंह–शषम्भु गुप्त, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली, 2003, पृष्ठ –130
21. दूसरी परम्परा का का प्रष्न–सुधीर रंजन सिंह, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली, 1994, पृष्ठ –181
22. दूसरी परम्परा का का प्रष्न–सुधीर रंजन सिंह, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली, 1994, पृष्ठ –181
23. बीसवीं सदी की हिन्दी आलोचना –विष्वनाथ प्रसाद तिवारी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाषन, नयी दिल्ली, पृष्ठ –200
24. दूसरी और दूसरी परम्परा–सुधीर रंजन सिंह, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली, 2003, पृष्ठ –240
25. आलोचना के बदलते मानदण्ड और हिन्दी साहित्य–डॉ.षिवकरण सिंह, किताब महल, इलाहाबाद, 1967, पृष्ठ –368
26. भूमिका– कविता के नये प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 2006,
27. भूमिका– कविता के नये प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाषन, नयी दिल्ली, 2006,

 © Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities